Shodh Sangam Patrika
E-ISSN: 3049-0707, Volume 3 | Issue 2 | (April – June 2026)

गीता में आहारों का त्रिविध भेद तथा उनके जीवन पर प्रभाव

प्रो. हीरालाल शर्मा [1], डॉ. रमेश मालाकार [2]

[1] हिंदी विभागाध्यक्ष, शासकीय दाऊ कल्याण पी जी महाविद्यालय, बलौदा बाजार

[2] सहायक प्राध्यापक (अतिथि) संस्कृतविभाग, पण्डित सुदरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़, बिलासपुर

सारांश–

यह लेख भगवद्गीता में वर्णित आहार के त्रिविध भेद- सात्त्विक, राजसिक और तामसिक तथा उनके मनुष्य जीवन पर प्रभाव का विस्तार से विवेचन प्रस्तुत करता है। लेख में बताया गया है कि आहार केवल शरीर के पोषण का साधन नहीं, अपितु मन, बुद्धि, स्वभाव और आचरण को भी प्रभावित करता है। "जैसा अन्न, वैसा मन" के सिद्धांत के आधार पर गीता में भोजन को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है। सात्त्विक आहार में फल, सब्जियाँ, दूध, घी आदि शुद्ध एवं पौष्टिक पदार्थ आते हैं, जो आयु, बल, स्वास्थ्य, शांति और सद्विचारों को बढ़ाते हैं। ऐसा भोजन व्यक्ति को संयमी, शांत और आध्यात्मिक बनाता है। राजसिक आहार अत्यधिक तीखा, खट्टा, नमकीन और गरम होता है, जो मन में चंचलता, उत्तेजना, चिंता और रोग उत्पन्न करता है। तामसिक आहार में बासी, अशुद्ध और रसहीन भोजन शामिल है, जो आलस्य, अज्ञान और दूषित प्रवृत्तियों को बढ़ावा देता है। लेख में यह निष्कर्ष बताया गया है कि मनुष्य के स्वास्थ्य, मानसिक संतुलन, संस्कार और आध्यात्मिक उन्नति के लिए सात्त्विक आहार अत्यंत आवश्यक है। वर्तमान समय में तामसिक भोजन की बढ़ती प्रवृत्ति समाज और स्वास्थ्य दोनों के लिए हानिकारक मानी गई है। इसलिए गीता के अनुसार शुद्ध, संतुलित और सात्त्विक आहार अपनाना मानव कल्याण के लिए अनिवार्य बताया गया है।

मुख्य शब्द- सात्त्विक आहार, राजसिक आहार, तामसिक आहार, प्रकृति, स्वास्थ्य, मनोवृत्ति, शुद्धता, अध्यात्म, कर्मयोग, मोक्ष।

मूल आलेख-

महासागर के समान महाभारत ज्ञान का विश्वकोश है। इस सागर के मंथन से जो रत्न प्राप्त हुए, उनमें एक गीता रूपी रत्न है। ये दोनों ही अनुपम ग्रंथरत्न हैं। महाभारत के भीष्म पर्व में गीता का स्थान है। गीता का विषय ज्ञान-विज्ञान, अध्यात्म तत्व का विवेचन, चर-अचर जगत, जीवात्मा और परमात्मा आदि सभी विषयों का विशेष रूप से उद्घाटन करना है। सभी युगों में गीता की प्रासंगिकता और वैज्ञानिकता सिद्ध हुई है। इसका कारण यह है कि यह केवल ग्रंथ नहीं, बल्कि एक शास्त्र है। गीता शास्त्र कर्तव्य-अकर्तव्य, उचित-अनुचित, धर्म-अधर्म का बोध कराता है। गीता भगवान श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिए गए ज्ञान और अनेक साधनों की अभिव्यक्ति है। यह केवल अर्जुन के लिए ही उपयोगी नहीं है, बल्कि समस्त मानव जाति के कल्याण के लिए उपदेशित है, जिसका अनुसरण करके प्रत्येक मनुष्य अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में क्या अनुकूल है, क्या प्रतिकूल है, क्या ग्रहणीय है और क्या त्याज्य है- यह सब गीता में बताया गया है।

इस लेख में गीता में वर्णित आहार विषयक विवेचन का अध्ययन किया गया है। सभी प्राणियों के लिए जीवन हेतु आहार की आवश्यकता सदैव रहती है। संसार में कोई भी जीव अन्न के बिना अस्तित्व में नहीं रह सकता। बल्कि उनका

जन्म और अस्तित्व भी अन्न से ही होता है- "अन्नाद्भवन्ति भूतानि", "अन्ने प्रतिष्ठितो लोकः", "अन्नाद्भवन्ति वै प्राणाः"[१]। आहार जीव की प्रवृत्ति को भी अत्यधिक प्रभावित करता है। जैसा अन्न, वैसा मन। जीव की वृद्धि, बल, पुरुषार्थ, शक्ति, ओज, तेज, सौंदर्य, स्वास्थ्य, प्रकृति, वर्ण, रूप आदि सब कुछ उसके आहार से ही निर्धारित होता है। उसके आचरण, मनोवृत्ति, प्रकृति और गति आदि भी अन्न पर निर्भर होते हैं। इसलिए कहा गया है- "अन्नमयं हि सौम्यं मनः"।

भगवान श्रीकृष्ण जगत के नियंता हैं और लोकहित के लिए प्रकट हुए। उन्होंने नारायण रूप में अर्जुन के माध्यम से प्रत्येक मनुष्य का गीता के द्वारा मार्गदर्शन किया। गीता में विभिन्न प्रकार के आहारों का विचार किया गया है- क्या खाना चाहिए, कैसा खाना चाहिए, कब खाना चाहिए, क्या अनुकूल है, क्या प्रतिकूल है, क्या त्याज्य है, इन सबका ज्ञान विभिन्न प्रसंगों के माध्यम से दिया गया है। गीता के 17वें अध्याय में आहार को तीन प्रकार का बताया गया है- सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। इनमें आहार के स्वरूप, गुण और प्रभाव आदि का वर्णन किया गया है-

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥[२]

इस श्लोक में कहा गया है कि जब मनुष्य का आहार, विहार और कर्म संतुलित होता है, तब उसका योग दुःखों का नाश करने वाला होता है। गीता में वर्णित कर्मयोग, ज्ञानयोग आदि सभी मनुष्यों के लिए आवश्यक हैं। न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्। कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः[३]।। नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः। शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः[४]।। इन सिद्धांतों के अनुसार प्रत्येक जीव किसी न किसी प्रकार के कर्म में लगा रहता है। आसक्ति रहित योगी शरीर, मन, बुद्धि और इंद्रियों की शुद्धि के लिए कार्य करते हैं-

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।

योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये॥[५]

आहार में भी यह शुद्धि आवश्यक है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति के लिए उचित आहार का सेवन आवश्यक है। प्रतिकूल आहार से मनुष्य अनेक दुःखों को आमंत्रित करता है। इसलिए श्रुति-स्मृति आदि ग्रंथों में सात्त्विक और हितकारी भोजन ग्रहण करने का उपदेश दिया गया है। वाग्भट्ट ने "हित भुक्, मित भुक्, ऋत भुक्" अर्थात उचित समय पर और सीमित मात्रा में भोजन करने का सिद्धांत बताया है। छान्दोग्य उपनिषद में शुद्ध सात्त्विक भोजन को मोक्ष प्राप्ति के लिए आवश्यक साधन बताया गया है-

आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।

स्मृतिलब्धे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः[६]॥

---

[१] तैत्तिरीयोपनिषद

[२] श्रीमद्भगवद्गीता 6.17

[३] श्रीमद्भगवद्गीता 3.5

[४] श्रीमद्भगवद्गीता 3.8

[५] श्रीमद्भगवद्गीता 5.11

[६] छान्दोग्योपनिषद अध्याय 7, खण्ड 26, मंत्र 2

जो शुद्ध आहार करता है, उसका चित्त शुद्ध होता है। चित्त शुद्ध होने से स्मृति स्थिर होती है और स्थिर स्मृति से शास्त्र ज्ञान प्राप्त होता है, जिससे मोक्ष की प्राप्ति होती है। गीता में त्रिविध आहार "आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः" इस प्रकार गीता में तीन प्रकार के भोजन बताए गए हैं। ये हैं- सात्त्विक, राजसिक और तामसिक।

सात्त्विक –

आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।

रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः[७]॥

जो आहार आयु, बल, स्वास्थ्य और सुख को बढ़ाते हैं, जो स्थिर, हृदय को प्रसन्न करने वाले और स्निग्ध होते हैं, वे सात्त्विक आहार हैं। सात्त्विक आहार में अशुद्ध, हिंसक या दूषित भोजन शामिल नहीं होता। इसमें फल, सब्जियाँ, अन्न, दूध, घी, दही आदि आते हैं। ये पदार्थ अहिंसात्मक होते हैं और शरीर व मन के लिए हितकारी होते हैं। ऐसे भोजन करने वाले लोग शांत, स्थिर और सदाचारी होते हैं, जिससे व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र का कल्याण होता है। ऐसा भोजन वैज्ञानिक दृष्टि से तथा धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टि से भी पूर्णतः शरीर के लिए उपयोगी और अनुकूल होता है। मनुष्य की मनोवृत्ति भी ऐसे आहार से विकसित और परिष्कृत हो जाती है। वह सदैव शुद्ध विचारों और उच्च भावनाओं से परिपूर्ण रहता है।

राजसिक –

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरुक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः[८]॥

अत्यंत कड़वे, खट्टे, नमकीन, बहुत गरम और तीखे आहार पदार्थ रजोगुण से युक्त लोगों को प्रिय होते हैं। ये पदार्थ राजसिक वर्ग में आते हैं। राजसिक आहारों की प्रकृति और स्वरूप कड़वा, खट्टा और तीखा होता है। उत्तेजना उत्पन्न करने वाले इन पदार्थों का सेवन करके राजस प्रवृत्ति वाले लोग तृप्त होते हैं और इन्हें स्वादिष्ट मानते हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से पूर्णतः अनुकूल न होने के कारण ऐसा भोजन रोग उत्पन्न करता है। भोजन के प्रभाव से मनुष्य विपरीत स्वभाव वाला बन जाता है। निरंतर दुःख, पीड़ा और चिंता बनी रहती है। परिणामस्वरूप मनुष्य सुखी नहीं रहता।

तामसिक –

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।

उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्[९]॥

अधपका, रसहीन, दुर्गंधयुक्त, बासी, जूठा तथा अशुद्ध भोजन तामसिक प्रवृत्ति वाले लोगों को प्रिय होता है। इस प्रकार के भोजन में शुद्ध सात्त्विक पदार्थों का अभाव होता है। बासी, दुर्गंधयुक्त, ऋतु के अनुसार न होकर ऋतु समाप्त होने के बाद तक रखा गया, कृत्रिम रूप से संरक्षित- इस प्रकार के स्वभाव वाले खाद्य पदार्थ तामसिक होते हैं। वास्तव में

[७] श्रीमद्भगवद्गीता 17.18
[८] श्रीमद्भगवद्गीता 17.9
[९] श्रीमद्भगवद्गीता 17.10

ये पदार्थ मनुष्य का प्राकृतिक भोजन नहीं होते। तामसिक भोजन के कारण मनुष्य का आचरण और व्यवहार गिरा हुआ या दूषित हो जाता है। वैज्ञानिक दृष्टि से ऐसा भोजन मानव के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है और अनेक रोगों का कारण बनता है। तामसिक भोजन के प्रभाव से मनोवृत्ति भी दूषित और विकृत हो जाती है। वास्तव में आहार का सीधा प्रभाव व्यक्ति, समाज और राष्ट्र पर पड़ता है। जैसा भोजन, वैसा ही संस्कार बनता है। चाणक्य नीति में कहा गया है-

दीपो भक्ष्यते ध्वान्तं कज्जलं च प्रसूयते।

वदन्तं भक्ष्यते नित्यं जायते तादृशी प्रजा[१०]॥

गीता में बताए गए आहार के स्वरूप और उसके प्रभाव को देखकर अपने तथा दूसरों के सुख, सुरक्षा और स्वास्थ्य के लिए सात्त्विक आहार का सेवन करना चाहिए। संसार में स्वास्थ्य के बिना कोई भी सुख श्रेष्ठ नहीं है। स्वास्थ्य किसी भी धन से खरीदा नहीं जा सकता। जैसा कहा गया है- "किं सौख्यम्? नित्यमरोगिता जगति"। और भी, निरामिष (शाकाहारी) भोजन से स्वास्थ्य की रक्षा होती है। स्वादिष्ट (रुचिकर) भोजन दुःखद परिणाम उत्पन्न करता है, तथा रोग और आकस्मिक मृत्यु का भय सदैव बना रहता है।

निष्कर्ष–

आहार मनुष्य के अस्तित्व को तथा उसके आंतरिक और बाह्य व्यक्तित्व को विकसित भी करता है और नष्ट भी करता है। मनुष्य का योग उचित और अनुकूल आहार ग्रहण करने से सिद्ध और सफल होता है। साथ ही रोग और विकार भी नष्ट या संतुलित हो जाते हैं। मनुष्य की प्रवृत्तियों और गुणों की अधिकता या कमी भी आहार से ही निर्धारित होती है। मनुष्य की प्रवृत्ति सदैव क्षणिक भोग और सुख की ओर रहती है। भोजन के विषय में भी यही सत्य देखा जा सकता है, जहाँ गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को माध्यम बनाकर अपने उपदेश से मनुष्य को अन्न-पान के विषय में जागरूक, शिक्षित और अनुशासित किया है। गीता में सर्वत्र ऐसे विचार, नियम और प्राकृतिक प्रवृत्तियाँ व्यक्त की गई हैं, जिनसे यह ज्ञात होता है कि यथायोग्य, सात्त्विक स्वभाव वाला, उचित, अनुकूल और सकारात्मक आचरण ही उत्तम परिणाम देता है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि पशु केवल भूख मिटाने के लिए भोजन करता है, मनुष्य स्वाद के लिए, बुद्धिमान व्यक्ति स्वास्थ्य और शक्ति के लिए और साधु केवल साधना के लिए भोजन ग्रहण करता है। इसलिए हमें बुद्धिमान या साधु बनने का प्रयास करना चाहिए। वर्तमान समय में हम देख सकते हैं कि मनुष्यों की रुचि सात्त्विक भोजन की अपेक्षा तामसिक भोजन में अधिक हो गई है। तामसिक भोजन किसी भी दृष्टि से अनुकूल और उचित सिद्ध नहीं होता। इसलिए स्वास्थ्य, धन, समाज, संस्कृति, पर्यावरण, धर्म और आध्यात्म आदि की रक्षा तथा उन्नति के लिए और स्वयं को श्रेष्ठ मनुष्य बनाने के लिए गीता द्वारा प्रस्तावित शुद्ध सात्त्विक आहार को अपनाना अत्यंत आवश्यक है।

सन्दर्भग्रन्थसूची -

१. बृहद्देशी - के.साम्बशिवशास्त्री, संस्कृतग्रन्थप्रकाशन, कोकम्यान्दाः, १९०३
२. श्रीमद्भगवद्गीता – वासुदेवलक्ष्मणशास्त्री, इण्डोलाजिकल् बुक् हउस्, वाराणसी, 1983
३. श्रीमद्भगवद्गीता – डा. नत्रिभुवः, अमर प्रिन्टिंग प्रेस, वाजपेयीदिल्ली, 2008
४. महाभारतम् – पण्डित रामचन्द्रशास्त्री, ओरिण्टलवुक्स रीप्रींट् कापरिशन्, नई दिल्ल्-110002, 1979

[१०] श्रीमद्भगवद्गीता 8.3

५. श्रीमन्महाभारतम् – वि. सुक्तङ्कर् एस. के, बण्डार्कर ओरियण्टल् रीसर्च्, 1952
६. शिवपुराण - गीताप्रेस, गोरखपुर, १८९५
७. संस्कृतवाङ्मयान्तःप्रवेशिका - डा. सोमनाथदाशः, चौखम्बासंस्कृतप्रतिष्ठान, वाराणसी, २०२२